

प्राचीन भारत में पर्यावरण : वैदिक काल के संदर्भ में

चन्द्रोदय सिंह*

जीवन के लिए जिन संघटनात्मक तत्वों को अनिवार्य माना जाता है, कभी-कभी उनका अत्यधिक दोहन जीवनसंकट का एक अनपेक्षित घटक बन जाता है। कारण कि मनुष्य यह भूल जाता है कि जीवन निरपेक्ष नहीं सापेक्ष है, निरा वैयक्तिक नहीं समष्टिभूत है, किंवा विश्वीय है। विश्वीय होने के कारण ही विश्वात्मा है और विश्वात्मा ही नहीं सर्वात्मा है। तभी तो वैदिक ऋषि के अन्तस् से प्रस्फुटित होता है—'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्'¹, 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'², 'सर्वभूतरथाम्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'³ तथा सभी प्राणियों के हित में सदैव रत रहने का हृदयस्पर्शी भाव। वस्तुतः उसका यह सर्वलोकोपकारी भाव केवल चेतन के प्रति ही नहीं अपितु अचेतन प्रकृति के प्रति भी भावप्रवणता का परोक्ष संदेश है क्योंकि प्रथम दृष्ट्या उसका साक्षात्कार बाह्य प्रकृति से ही होता है जिसकी आराधना की पृष्ठभूमि पर वह 'असत् से सत् की ओर', 'अंधकार से प्रकाश की ओर', 'मृतत्व से अमृतत्व की ओर'⁴, 'अज्ञान से ज्ञान की ओर', 'निश्चेतना से चेतना', 'आत्मचेतना' और अन्ततः 'पूर्ण चेतना' की ओर जाने की अभीप्सा करता है। उसकी यह अभीप्सा पूर्णत्व की प्राप्ति हेतु चेतना की ओर जाने की अभीप्सा करता है। उसकी यह अभीप्सा पूर्णत्व की प्राप्ति हेतु 'जीवेम शरदः शतम्'⁵ की जिजीविषा के रूप में अभिव्यक्त होती है। कारण कि वह पृथ्वी का पुत्र तो है ही किन्तु है दिव्य लोक का अधिकारी भी। विडम्बना यह है कि पृथ्वी के गर्भ से प्रसूत, वायु के झूले में झूलता, आकाश की लोरी सुनता, जल की बूंद से तृप्त तथा अग्नि के तेज से दीप्तिमान यह पंचमहाभूतपुत्र अपने मूल से कटकर, शैशव से विस्मृत, युवावस्था के मद में मस्त, किन्तु वार्धक्य के अन्त के प्रति बेहद भवभीय है।

वस्तुतः सामान्य व्यवहार में रहने के लिए जिन परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, उनमें अन्न, जलवायु, वस्त्र एवं आवास आदि, अनिवार्य हैं और ये सभी प्रकृति से प्राप्त होते हैं। अतः प्रकारान्तर से यह प्रकृतिजगत् ही पर्यावरण है।⁶ अपने व्युत्पत्तिक अर्थ में भी पर्यावरण ('परि' उपसर्ग पूर्वक 'आवरण' शब्द का योग) का तात्पर्य है चारों तरफ से घिरा हुआ। अर्थात् पर्यावरण वह स्थिति है जिसमें चारों तरफ से मनुष्य, पशु एवं वनस्पति घिरे हैं। इसीलिए पर्यावरण को पारिस्थिकी का एक अंश माना जाता है। इस संदर्भ में अवधेय है कि गहन पारिस्थिकी एक नयी

दृष्टि है जो पर्यावरण के संरक्षण के अतिरिक्त भी कुछ है। वह पारिस्थिकी के अन्तर्गत होकर भी पूर्णपारिस्थिकी नहीं है; क्योंकि पर्यावरण का सम्बन्ध मात्र प्राकृतिक परिस्थितियों से है जबकि पूर्णपारिस्थिकी के अन्तर्गत इसके साथ-साथ, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी निहित हैं। अतः पारिस्थिकी विस्तृत पर्यावरण है। स्पष्ट है 'पर्यावरण का अर्थ उन परिस्थितियों या परिवेशों से है जिनमें मनुष्य, पशु या पौधे आदि रहते हैं एवं क्रिया करते हैं। अतः उनसे पोषित एवं संरक्षित इन सबका अन्तर्सम्बन्ध एवं इनकी परस्पर निर्भरता पर्यावरण का एक रूप हैं। दूसरे शब्दों में प्रभावशाली दशाओं का सम्पूर्ण योग, जिसमें जीव रहते हैं, पर्यावरण है'⁷ एवं 'पर्यावरणवाद का सीधा सम्बन्ध मनुष्य को लाभ पहुँचाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण के नियंत्रण एवं प्रबन्धन से है'⁸। वैदिक परम्परा के अनुसार यह नियंत्रण एवं प्रबन्धन स्वयं प्रकृति के स्वरूप में ही है तथापि आज का तार्किक मानव इस आर्षमत के विपरीताचरण को आग्रही है जिसका परिणाम है— पर्यावरण की वैश्विक समस्या एवं इसका असमाधेय समाधान। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह अन्ततः असमाधेय ही रहेगा? वैदिक परम्परा यह नहीं मानती। उसके अनुसार हम भावपूर्ण ढंग से सम्पूर्ण प्रकृति को सम्पूर्ण भूमि को विश्व के रूप में (बिना भौगोलिक परिसीमन के) स्वीकार करें इस दृष्टि से वैदिक संस्कृति का वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्'⁹ (सम्पूर्ण वसुधा ही परिवार है) सिद्धान्त जीवन के 'सत्यम्' शिवम् एवं सुन्दरम् का एकमेव आदर्श हो सकता है जो वैदिक ऋचाओं में प्रस्फुटित है। यहाँ, जहाँ प्राकृतिक वातावरण के सन्तुलनार्थ आत्मशोधनपूर्वक सत्य को समर्पित यज्ञादि के विधानपूर्वक अपने शिवम् की कामना है वहीं प्रकृति के प्रकोप से बचने एवं स्वस्थ जीवन के लिए उसके शान्ति का आह्वान भी है। ध्यातव्य है कि यहाँ शान्ति के भी शान्ति का आह्वान है ताकि 'सुन्दरम्' की प्राप्ति हो सके। यथा—'कल्याणकारक, न ऊबने वाले, पराभूत न होने वाले, उच्चता को पहुँचाने वाले, शुभकर्म चारों ओर से हमारे पास आवें। प्रगति को न रोकने वाले, प्रतिदिन सुरक्षा करने वाले देव सदा हमारा संवर्धन करें।.....सोमरस निकालने वाले सुखकारी पत्थर हमें औषधि दें। स्थावर और जंगम के अधिपति, बुद्धि को प्रेरणा देने वाले उस ईश्वर का हम अपनी सुरक्षा के लिए आह्वान करते हैं।....हे देवों! कानों से हम कल्याणकारी वाणी सुनें, आँखों से हम कल्याणकारी वस्तुएँ देखें। स्थिर, सुदृढ़ अवयवों से युक्त शरीरों से हम तुम्हारी स्तुति करते हुए जितनी हमारी आयु है वहाँ तक हम देवों का हित ही करें (यज्ञादि की हवि से पर्यावरण का संरक्षण करते हुए)। हे देवों! सौ वर्ष तक हमारे आयुष्य की मर्यादा हो।¹⁰.....'अदिति ही द्युलोक, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सबदेव, पंचजन्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निषाद) है, जो बन चुका है और जो बनने वाला है, वह सब अदिति ही है (यही शाश्वत सत्य है)¹¹ हम सत्य मार्ग पर चलें।¹² द्युलोकरूपा, अन्तरिक्षरूपा, भूलोकरूपा, जलरूपा,

औषधिरूपा, वनस्पतिरूपा, ब्रह्मत्रयीलक्षणपरंरूपा, सम्पूर्ण जगद्रूपा तथा शान्तिरूपा जो स्वरूपतः शान्ति है वह हमारे लिए कल्याणकारी हो।¹³.....हमारी प्रजा सुखी हो, सर्वत्रसुशान्ति हो।

वस्तुतः पर्यावरण के लिए आवश्यक है कि वायुमण्डल प्रदूषित न हो और यह तभी सम्भव है जब हम सभी एक परिवार की तरह सहयोगपूर्वक परस्पर अपेक्षा का ध्यान रखें। वैज्ञानिक 'लवलाक' ने 1969 में यूनानी देवता 'गाया' के नाम पर एक 'गाया' सिद्धान्त स्थापित किया, जिसके अनुसार पृथ्वीग्रह के सभी निर्जीव एवं संजीव अवयवों के मध्य एक गहरा अन्तर्सम्बन्ध है। अतः पृथ्वी पर वायुमण्डलीय सन्तुलन विभिन्न प्राणियों तथा भौतिक पदार्थों के सहअस्तित्व पर निर्भर करता है।¹⁴ यह परस्परापेक्षा इस रूप में भी सहज स्वीकार्य है कि यदि आक्सीजन की आवश्यकता मनुष्य के लिए है तो कार्बनडाईआक्साइड की आवश्यकता भी पेड़ पौधों को है। किन्तु आज जिस तरह पाश्चात्यीकरण, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के प्रभाव से पेड़, पौधे, पहाड़ तथा जल, जंगल, जमीन एवं जीवन का क्षरण हो रहा है, यह वायुमण्डलीय असन्तुलन का मुख्य कारण है तथा मनुष्य के 'ततः किं' की परिपृच्छा का उत्तर भी। इस सन्दर्भ में भारतीय परम्परा प्रकृति में विद्यमान तत्त्वों की परस्परनिर्भरता एवं कर्तव्यशीलता का जो उदाहरण प्रस्तुत करती है वह श्लाघ्य ही नहीं, अनुकरणीय भी है। यथा—'सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। कर्मसमुदाय को तू वेद से उत्पन्न और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जान। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी, परम, अक्षर, परमात्मा सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित है।¹⁵ अथर्ववेद' तो सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्या के समाधान के साथ-साथ जीवन का प्रतिनिधि वेद है। यहाँ तो लाक्षणिक भाषा में हमारे ऋषियों ने पृथ्वी को माता एवं स्वयं को उसका पुत्र कहा है।¹⁶ उसे तीनों लोकों में उत्तम¹⁷ कहते हुए उसके गुणगान का आह्वान किया है क्योंकि 'यह भाषाभेद और धर्मभेद के होते हुए भी सभी को एक परिवार के तुल्य पालती है सामाजिक सन्तुलन के सम्बन्ध में वैदिक ऋषि कहता है कि 'हे पृथ्वी माता! आप सभी को रहने के लिए स्थान देती हैं, अतः आप हमें तेजस्वी बनायें। हममें परस्पर कोई द्वेषभाव न हो हम सबके प्रिय हों। यहाँ मातृतुल्य प्रकृति की भी अपेक्षा है कि सभी व्यक्ति मिलजुलकर सामाजिक कार्य करें, उनमें सामूहिक कर्म करने की सद्बुद्धि हो। उनमें ऊँच-नीच का भेदभाव न हो, परस्पर भाई-भाई तुल्य व्यवहार करें।¹⁸ इसी प्रकार प्राकृतिक सन्तुलन के सम्बन्ध में भी मनुष्य के लिए ऋषि प्रार्थित उपदेश का सम्पुट मंत्र यहाँ द्रष्टव्य है—जिसमें सभी प्रकार की वनस्पतियाँ, औषधियाँ पैदा होती हैं, वह पृथ्वीमाता विस्तृत और स्थिर हो। ऐसी विद्या, श्रुता, सत्य, स्नेह आदि सद्गुणों से पालन-पोषण

करने वाली कल्याणकारी और सुखकर साधनों को देने वाली मातृभूमि की हम सेवा करें (ताकि हमारी रक्षा हो)

वस्तुतः वैदिक ऋषियों की दृष्टि में भौगोलिक दृष्टि से जिस भूमि पर अनेक देश, उसके नागरिक अवस्थित हैं, जिसपर विभिन्न, नदियाँ, पर्वत, जंगल और प्राकृतिक सत्ताएँ अवस्थित हैं; जिसपर विभिन्न पशु पक्षी विचरण करते हैं एवं कीट-पतंग क्रियाशील हैं; ये सभी मिलकर एक परिवार हैं, यही विश्व परिवार हैं, यही विश्व परिवार है, जिसको एक भाव से देखना अपनी भावपूर्ण दृष्टि का वैश्वकीकरण है। इसीलिए 'अथर्ववेद' के 'भूमिसूक्त' में पृथ्वी को माता कहा गया है और उसकी उर्वराशक्ति, सहनशीलता, पालनशीलता आदि का वर्णन करते हुए उससे अपने दीर्घायु होने की कामना की गयी है। उससे प्रार्थना की गयी है कि 'जिस मातृभूमि में सागर महासागर, नदी, नहर, झीले, तालाब, कुएँ आदि जल के साधन हों, जहाँ सब भाँति के अन्न, फल शाक आदि अधिक मात्रा में पैदा होते हों, जिससे सभी प्राणी सुखी हैं इस प्रकार की हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोज्यपदार्थ एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो। यज्ञ कर्म करने वालों के लिए नदियाँ, वायु मधुर, प्रवाह पैदा करे सभी औषधियाँ मधुरता से सम्पन्न हों।¹⁹ सभी वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुरता प्रदाय करें एवं सूर्यदेव अपने माधुर्य से पुष्ट करें। पिता की तरह पोषणकर्ता दिव्य लोक हमारे लिए माधुर्ययुक्त हो। मातृवत् रक्षक पृथ्वी की रज भी मधु के समान आन्नदप्रद हो। इसीलिए वैदिक परम्परा में प्रकृति को वायुप्रदूषण, जलप्रदूषण, ध्वनिप्रदूषण, खाद्यप्रदूषण तथा पृथ्वी एवं वनस्पतियों से सम्बन्धित प्रदूषण से मुक्त रखने तथा जलरक्षण से सम्बन्धी अनेकशः उद्घरण प्राप्त होते हैं। यहाँ वायु की शुद्धि को जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषित करते हुए इसे शुद्ध एवं अशुद्ध (सागरपर्यन्त, समुद्र से दूर प्रदेशपर्यन्त) दो रूपों में विभाजित कर²⁰ विविध गुणावगुण गैसों का मिश्रण कहा गया है। इनमें ही वह प्राणवायु (आक्सीजन) है जो अमरत्व की धरोधर एवं जीवन के लिए अति आवश्यक है यह शुद्ध एवं ताजी वायु अमूल्य औषधि है। हमें उसे स्वच्छ रखना चाहिए। पुनः हम जानते हैं कि जल के बिना जीवन असम्भव है, फिर भी हम कल-कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ, कूड़ा-करकट, रासायनिक अपशिष्ट आदि नदियों में प्रवाहित करते रहते हैं। यहाँ तक कि सामुद्रिक परमाणु विस्फोट से भी जल को प्रदूषित करने से बाज नहीं आते जिसका वैश्विक परिणाम सामने है। अस्तु, वैदिक परम्परा में जल की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि हे जल! तुम अन्न की प्राप्ति के लिए आवश्यक हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्नादि पदार्थ निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो। यहाँ तक कि देखने, सुनने तथा बोलने की शक्ति भी पर्याप्त जल के बिना नहीं आती।²¹ रोग रहित, रोगनाशक इस जल को मैं लाता हूँ जिससे मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अतः शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घायु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक एवं कल्याणकारी हो।²²

इसी प्रकार ध्वनि प्रदूषण के सम्बन्ध में वैदिक परम्परा में कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीखी ध्वनि से बचें एवं आपस में वार्तालाप

करते समय धीमें एवं मधुर बोलें²³ हमारी जिहवा से मधुर शब्द निकलें भजन, पूजन एवं कीर्तन करते समय मूल में मधुरता हो; मेरे कर्म में मधुरता हो तथा चित्त में मधुरता बनी रहे। इसके साथ ही मिट्टी (पृथ्वी) एवं वनस्पतियों में प्रदूषण की रोकथाम के लिए उसके साथ भावनात्मक सम्बन्ध जोड़ते हुए कहा गया है कि "नाना प्रकार के फल, औषधियाँ, फसल पेड़ पौधे आदि इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं एवं उनपर हमारा जीवन निर्भर करता है। अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें। इसी प्रकार जल संकट से मुक्ति एवं इसके संरक्षण हेतु परोक्ष उपदेश है कि पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और मेघ पिता है क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान करता है। इतना ही नहीं आज अध्यात्म एवं विज्ञान जिस नित्यतत्त्व को क्रमशः चेतना एवं ऊर्जा कहकर दोनों के साम्य के आधार पर जगत् के सम्बन्ध में एक समन्वित विश्लेषणात्मक भाव की ओर अग्रसर हैं उसके मूल की ओर संकेत हुए वैदिक परम्परा कहती है कि 'पृथ्वी के मध्यभाग तथा औषधियों में अग्नि तत्त्व विद्यमान है। जल में, विद्युत में पत्थरों में, मनुष्यों में, गौवों एवं घोड़ों आदि पशुओं में भी अग्नि तत्त्व विद्यमान है। इसलिए ये सभी एक सूत्र में बंधे होने से परस्पर समवायी रूप से आबद्ध हैं यही भाव वेदान्त दर्शन के 'पचीकरण' सिद्धान्त में भी द्रष्टव्य है।

इतना ही नहीं, पौराणिक आख्यान पर आधारित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् एवं 'मेघदूतम्' आदि में तो कालिदास मनुष्य एवं प्रकृति के पृथक्त्व की अपेक्षा मानवीकरण एवं परस्परापेक्षी सह अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। शकुन्तला के सान्निध्य में उन्हें सहकारवृक्ष लता के साथ ही सनाथ दिखायी देता है।²⁴ वह नवमालिका और सहकार में वरवधू का सम्बन्ध देखते हैं। उन्हें महल के कृत्रिम वातावरण की अपेक्षा वन के प्राकृतिक वातावरण में अधिक सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। शकुन्तला की विदाई के समय तपोवन के वृक्ष अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण देकर कण्व ऋषि की सहायता करते हैं और कण्व ऋषि वनदेवता एवं सभी लतादि से शकुन्तला की विदाई की आज्ञा मांगते हैं। प्रकृति के आठ रूप कालिदास के भगवान शंकर की आठ मूर्तियाँ हैं जिनसे वे विश्वमंगल की कामना करते हैं।

किन्तु मूल प्रश्न है कि क्या हम इस योग्य हैं कि प्रकृति हमारे लिए सर्वदा कल्याणकारी हो? प्राकृतिक सम्पदाओं का अप्रतिहत दोहन, जंगलों की अबाध कटाई, पहाड़ों के साथ-साथ जीव-जन्तुओं के साथ छेड़छाड़ नदियों के कल-कल प्रवाह को अवरुद्ध करना, वायुमण्डल को कृत्रिम साधनों से प्रदूषित करना, अपसंस्कृति का ही संस्कृतीकरण करना आदि ऐसे कटुसत्य हैं जिनके कारण प्राकृतिक असन्तुलन के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असन्तुलन हुआ है। इसका परिणाम कहीं अतिवृष्टि कहीं अनावृष्टि कहीं भूकम्प कहीं सुनामी, कहीं ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियर का पिघलना एवं इससे बहुत बड़ी आबादी के विनाश का खतरा तथा टूटते

संवेदी रिश्ते एवं एकाकी भरे निरर्थक जीवन के रूप में सामने है। इसे ही हम सामान्य जनभाषा में प्राकृतिक प्रकोप एवं कलियुग का प्रभाव कहते हैं, जबकि इसके कारण हम स्वयं हैं। अस्तु, यदि हम मातृतुल्य प्रकृति की गोद में स्नेहसिक्त होना चाहते हैं तो हमें पुत्रभाव से अपनी आर्षपरम्परा का अनुगामी होना पड़ेगा। इसीलिए भारतीय मनीषियों ने प्रकृति का मानवीकरण कर उससे पुत्रवत् प्रत्येक वस्तु की विनयीभाव से याचना की, अहंकार पूर्वक विजयी भाव से नहीं। यथा, जिस भूमि में वृक्ष वनस्पति और लतादि स्थिर रहते हैं, जो वृक्ष, लतादि औषधि रूप में सबकी सेवा सम्पन्न करती है ऐसी वनस्पतिधारिणी सर्वपालनकर्त्री धरती को हम शीश झुकाकर स्तुति करते हैं त्रिविध ताप की शान्ति हो।²⁵

संदर्भ

1. महामना के विचार, पृ0 20, प्रकाशक, का0हि0वि0, वाराणसी, 2007
2. विष्णु धर्मोत्तर, 3.255.44
3. गीता, 6.29
4. शतपथब्राह्मण, 14.1.1.30 एवं अथर्व, 18.3.62. 'परैतुभ्यायुरमृतं म एतु' अथर्ववेद, 19.67.2.
5. कॉम्पेक्ट आक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृ0 274..
6. कमलाप्रसादः पर्यावरणीय अध्ययन, पृ0 2
7. फ्रिजॉफ कॉप्राः टर्निंग प्वाइन्ट, पृ0 7
8. हितोपदेश, अयं निजः परोवेतिगणनां लघुचेतसां।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।
9. श्रग्वेद, 1.89.170, शुक्लयजुर्वेद, 25.14-22
10. श्रग्वेद, 1.89.170, शुक्लयजुर्वेद, 25.14-23
11. यजुर्वेद, 7.45
12. शुक्लयजुर्वेद, 36.17
13. समाज धर्म एवं दर्शन, वर्ष 24, अंक 3-4 पृ0 24
14. गीता, 3.14-15
15. अथर्व, 12.1.12
16. अथर्व, 6.21.1
17. ऋक्, 5.60.5
18. यजुर्वेद, 13.27
19. ऋग्वेद, 10.136.2
20. अथर्व, 3.13.6
21. ऋग्वेद, 10.9.4
22. अथर्व, 3.30.3
23. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक,
24. अथर्व, 12.1.27

